नियमसार, आधार दिया है। इसी प्रकार श्लोक द्वारा कहते हैं।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति सन्सारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

आत्मा स्वयं कर्म करता है,... किसी की कुछ सहायता नहीं। स्वयं अपने को भूलकर, विकल्प से लेकर परभाव को स्वयं करता है। यह तो ज्ञानानन्द शुद्ध विकल्परहित स्वरूप है, परन्तु यह विकल्प से लेकर दूसरे पदार्थ का कर नहीं सकता और करता हूँ— ऐसे अभिमान में मिथ्यात्वभाव का सेवन करता है। **'स्वयं कर्म करोत्यात्मा'** यह कर्म का भाग और विकल्प अपने आप स्वयं करता है। ऐसा कहकर कर्म के कारण से करता है, ऐसा नहीं – यह कहते हैं। जो विकार करता है, भटकता है, वह कर्म के कारण से नहीं। **'स्वयं कर्म करोत्यात्मा'** विकल्प से लेकर शुभाशुभराग, वह कर्म है, विकार है, दुःख है। उससे लेकर राग-द्वेष विकल्पों का जाल स्वयं करता है, स्वयं उसका फल भोगता है। आहाहा! किया हो किसी के लिये, उसे भोगने के लिये दूसरे साथ नहीं आते। स्त्री-पुत्र के लिये पाप किया हो, उसे भोगने के लिये कहीं स्त्री-पुत्र साथ आते हैं? अकेला करता है और अकेला भोगता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्त्री-पुत्र का करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ थे, यह करे? स्त्री-पुत्र इसके कहाँ थे? वे तो उनके हैं। वह तो उनकी चीज़ है। अब उनकी चीज़ में करना कहाँ था? यह तो विकल्प भी जब इसके नहीं, विकल्प भी कर्मकृत है; स्वभावकृत नहीं। आहाहा! शुभ-अशुभ आदि राग कहीं स्वभावकृत नहीं। स्वभाव तो आनन्द का सागर है; उसमें विकल्प का दुःख नहीं है। आहाहा! विकल्प से लेकर बाहर के जितने संयोगों के आश्रय से विकल्प करता है, वह स्वयं करता है। दूसरे कराते हैं – ऐसा नहीं है। कर्म भी कराते हैं – ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा!

आत्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है,... आहाहा! नरक और

निगोद में, अकेला ३३-३३ सागर नरक में। निगोद में तो अनन्त काल अपने किये हुए फल को भोगता है। आहाहा! **स्वयं संसार में भ्रमता है...** वापस स्वयं कर्म को करता है। स्वयं संसार में भ्रमता है; कर्म के कारण से नहीं। **स्वयं संसार में भ्रमता है...** नरक और निगोद के फल जो धारण करे, वह स्वयं अपने अपराध से करता है। एक विकल्प उठे, वह भी अपराध है। आहाहा! निरुपाधिस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सागर है। निर्विकल्प स्वभाव का सागर है। उसमें विकल्पमात्र उठता है, वह सब संसार है।

वह संसार स्वयं करता है, भोगता है। **स्वयं संसार में भ्रमता है तथा स्वयं संसार से मुक्त होता है। 'तस्मात्'** है न? यह शब्द उस दिन पूछा था न? भाई! **'तस्मात्'** अर्थात्? यह **तस्मात** अर्थात् संसार, ऐसा। **स्वयं भ्रमति सन्सारे स्वयं सन्सारेविमुच्यते।** आहाहा! संसार से मुक्त अकेला होता है। अपने धर्मध्यान और शुक्लध्यान स्व आत्मा के आश्रय से (होता है)। परद्रव्य का कुछ आश्रय नहीं होता। आहाहा! दूसरा श्लोक।

एकस्त्व-माविशसि जन्मनि सङ्क्षये च,
भोक्तुं स्वयं स्वकृतकर्मफलानुबन्धम्।
अन्यो न जातु सुख-दुःख-विधौ सहायः,
स्वाजीवनाय मिलितं विटपेटकं ते।।

आहाहा! सोमदेव पण्डित ने कहा है। **स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को स्वयं भोगने के लिए...** अकेला फल नहीं, उसका अनुबन्ध। एक के बाद एक, एक के बाद एक उसका फल आया ही करे। आहाहा! लोग नहीं कहते कि घर में से पलंग छह महीने से खाली नहीं होता। एक बीमार पड़े और उठे, वहाँ दूसरा पड़े; दूसरा उठे, वहाँ तीसरा पड़े, (ऐसा) छह-छह महीने तक। परन्तु यह तो अनन्त काल। एक... जहाँ आवे, वहाँ दूसरा, तीसरा, चौथा - ऐसे अनन्त अनुबन्ध। कर्म की लार। आहाहा!

स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को स्वयं भोगने के लिये तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है,... तेरे किये हुए भाव को भोगने के लिये जन्म में तेरा जन्म उसके कारण है। जन्म में प्रवेश है, वह तेरे किये हुए कर्म के कारण प्रवेश है। आहाहा! और मरण में भी यह। अकस्मात् मरण आ जाता है। आहाहा! बैठे होवे न ऐसे... लड़का मलकापुर का। क्या कहलाता है? ऐसा, मलकापुर का लड़का है न? स्वरूपचन्द कहता

था कि एक लड़का मेरा मित्र के साथ बैठा था, बात करते थे। नख में कुछ भी रोग नहीं। बात करते थे। बात करते-करते वहाँ थुऊं इतना किया, ऐसा जहाँ देखे वहाँ मर गया। बातचीत में कुछ रोग-बोग कुछ नहीं होता। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हुई, ऐसा हुआ, इतना कस निकल गया। जीव निकल गया। साथ में बातें करते थे। दोनों मित्र थे। वह स्वरूपचन्द बड़ा व्यापारी है। दस-दस हजार का कपड़ा। उस दिन की बात है। अब तो बढ़ गया होगा। मोक्षमार्गप्रकाशक तो पूरा कण्ठस्थ है। छोटा लड़का है, उसे मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा कण्ठस्थ है। यहाँ का रस बहुत है। तब कुँवारा था, अब विवाह हो गया होगा।

यहाँ कहते हैं कि **स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को...** लेकर एक के बाद एक, एक के बाद एक अवतार चला करते हैं। आहाहा! और **स्वयं भोगने के लिए तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है,...** आहाहा! कोई सहायक नहीं मिलता। अरबों पैसे (रुपये) हों तो भी क्या करे। आहाहा! चले गये। अरबोंपति चले गये। **जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है,...** प्रवेश करता है अर्थात् जन्म और मृत्यु स्वयं के कारण अकेले को होते हैं। आहाहा! **अन्य कोई (स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता;...** यह जब शरीर में तीव्र रोग आवे, वे तड़पे-देखे। आहाहा! अरे..रे..! यह क्या है?

दामनगर की एक लड़की थी। दो वर्ष की विवाहित, १८ वर्ष की छोटी उम्र और उसमें शीतला का रोग आया। दाने-दाने में कीड़े, दाने-दाने में कीड़े। धीरुभाई के दरवाजे के अन्दर। दरवाजे के अन्दर। लड़की को ऐसी पीड़ा। कीड़े दाने-दाने में। दाने अर्थात् छिद्र। ऐसे फिरे तो चिल्लावे, ऐसे फिरावे तो चिल्लावे। हजारों कीड़े घूमें। माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। यह अनुबन्ध की बात चलती है। है? **फलानुबन्ध को स्वयं भोगने के लिए तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है,...** आहाहा! वह लड़की रोती-रोती थी, माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये। यह कहाँ से आया? रोवे.. रोवे.. देह छूट गयी। कौन करे? आहाहा!

सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता;... स्त्री-पुत्र, जिन्हें 'मेरा' मानकर बड़ा किया, पढ़ाया-गुनाया। स्त्री को मनाया। आहाहा! वह कहे वैसा

करके दिया, प्रसन्न रखा। आहाहा! वह स्वयं को जब दुःख आया, वह बिल्कुल सहायभूत नहीं होते। यह विचार कब किया है?

मुमुक्षु : पैर तो दबावे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं पैर दबाते हैं। सुमन! पैर जड़ है। उसे दबावे, उससे आत्मा को-रामजीभाई को क्या हुआ? सुमनभाई आते हैं न? उन्हें मुम्बई मैं छह-सात-आठ हजार का वेतन है। यहाँ पैर दबाते हैं। पैर में क्या है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कोई जरा कठिन कहेगा। उन **सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता; अपनी अजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है।**

मुमुक्षु : महापुरुष तो ऐसा ही कहे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दुःख ही है न? दुःखी ही है न? विकल्प है, वह दुःख है, बापू! इसे कहाँ खबर है? आनन्द का सागर अन्दर डोलता है। वह किसी भी प्रकार के परपदार्थ के लक्ष्य से विकल्प करे, वह दुःखी है। दुःख की व्याख्या की खबर नहीं। दुःख तो मानो ऐसे अग्नि में जलता हो, बिच्छु काटता हो, पैर टूटा हो, उसे दुःख मानता है। आहाहा! इसे दुःख की खबर नहीं। यह तो आनन्द का सागर भगवान! ब्रह्मानन्द, उसे विकल्प से लेकर किसी भी चीज़ के लिये, परद्रव्य के लिये विकल्प उठावे, अरे! तीन लोक के नाथ की भक्ति के लिये विकल्प उठावे, वह विकल्प दुःखरूप है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है।

तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव अकषाय करुणा से जगत को कहते हैं, भाई! तेरे किये हुए कर्म के अनुबन्ध को एक के बाद एक तू भोगता है और तू करता है और तू भोगता है। बाकी तो ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, ये सब ठगों की टोली है। आहाहा! अनुकूल होवे, वहाँ तक ठीक और प्रतिकूल होवे तो उसमें एकान्त में कहे बड़ा राजा था, उसे रानी थी। नाम नहीं देते। रानी थी तो एकान्त में कहे, कुछ थोड़ा रानी का अपमान किया होगा, इसलिए रानी कहे कि देखो! हम जागीरदार। हम जागीरदार की लड़की हैं, कोई साधारण नहीं हैं। हमारा ऐसा अपमान करना नहीं। नहीं तो इसका फल अच्छा नहीं आयेगा। आहाहा! बड़े राजा को, हों! रानी ने कहा - हमारा अपमान करना नहीं। इसका फल अच्छा नहीं आयेगा।

हम कोई साधारण हरिजन, भंगी और ढेढ़ के घर में नहीं अवतरित हुए हैं। हम राजा के घर में अवतरित हुए हैं। राजा की रानी हैं। स्वामी को ऐसा कहे। आहाहा! हमको बताना नहीं अधिक, हों! यह बहुत लम्बा करना नहीं। नहीं तो इसका फल अच्छा नहीं आयेगा, ऐसा बोले। आहाहा! परन्तु यह तो किसी समय हो, इसलिए ध्यान रखे न। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ये सब लड़के-लड़कियाँ, स्त्री-पुत्र, बहुएँ... आहाहा! ये **अपनी अजीविका के लिये...** आजीविका के लिये-निभने के लिये **(मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है।** है शब्द इसमें? ठगों की टोली मिलकर तुझे ठगती है। आहाहा!

मुमुक्षु : उत्साह-उत्साह में ठगाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा ठगाता है। उत्साह में क्या? परद्रव्य के आश्रय से विकल्प उठाकर मानता है कि हम सुखी हैं। ठगाता है। समय-समय में ठगाता है, भाई! आहाहा!

वीतराग तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरा स्वरूप तो वीतराग है न? वीतराग के स्वभाव से भरपूर भगवान भण्डार है न? उसमें से वीतरागता आनी चाहिए और तू यह राग करता है, विकल्प उठाता है? इस दुःख के समुद्र में डुबकी मारता है, भाई! तुझे खबर नहीं है। आनन्द के सागर में डुबकी मारना चाहिए। आहाहा! कृत्रिम विकल्प, कृत्रिम—क्षणिक। उसमें डुबकी मारकर दुःखी होता है। यह भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर विराजता है। अन्दर एक बार डुबकी तो मार, अन्दर देख तो सही! आहाहा! तेरे दुःख का अन्त लावे, ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा! कैसे जँचे? आत्मा अर्थात् कुछ नहीं मिलता। यह सब शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र। पैस-बैसा हुआ हो तो... आहाहा! फटे, मस्तिष्क फट जाए (अभिमान में चढ़ जाता है)। आहाहा!

उपदेशवाले को उपदेश ठीक नहीं पड़ता। उसके अनुकूल न हो तो वह उपदेश भी ठीक नहीं पड़ता। वहाँ तक मस्तिष्क फट जाता है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं। यह स्त्री, पुत्र, लड़के-लड़कियाँ... बापूजी! बापूजी! करते आवें। ऐसे आधीन होते आवें और गोद में बैठने आवें। ऐसा सिर डाले। आहाहा! वहाँ वह सहलावे और हाथ डाले, बापू! सब ठगों की टोली है। आहाहा! कहो, देवीलालभाई! आहाहा! प्रभु! तेरे दुःख में वे जरा भी मदद नहीं करते। आहाहा! अरे! शास्त्र में यहाँ तक दृष्टान्त आता है।

दो भाई थे, छोटा भाई बीमार पड़ा, बड़ा भाई उसे दवायें लाकर दे। छोटे भाई को बहुत पता नहीं कि इसमें अण्डा लाता है। दवा में अण्डा और ऐसा लाता है। उसे खबर नहीं। आहाहा! उसमें बड़ा भाई उसके छोटे भाई की दवा करता था। वह मरकर नारकी हुआ और छोटा भाई मरकर परमाधामी हुआ। नरक में। परमाधामी मारता है, उसे याद आती है अरे! भाई! मैंने तेरे लिये किया था और तू? मैंने तुझसे कहाँ कहा था? चिमनभाई! ऐसा कठिन, बापू! आहाहा! यह जगत की अनुकूलता। आहाहा! उसमें पाँच-पचास करोड़ रुपये हों और लड़के का विवाह, लाख-दो लाख दे। जाओ, घूमो देशावर में दोनों, सब देख लो देशावर में। आहाहा! अर..र..र!

मुमुक्षु : आज लाख रुपये में पूरा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाख में नहीं होता। रेल में बैठे तो पूरा होता है। रेल में बैठे तो पूरा होता है। रेल में कम खर्च होता है न। आहाहा! अरे..रे..! दुनिया क्या करती है? कहाँ जाना है प्रभु तुझे? तू कौन है? और तू कहाँ जाना चाहता है? आहाहा! प्रभु! तू तो आनन्द का सागर है न, नाथ! प्रभु! तेरा हित तो तुझमें रहना, वह हित है। बाहर निकलना, विकल्प उठाना, प्रभु! उसमें दुःख है। आहाहा! श्रुत परिचित अनुभूता-आता है न? यह अपने आया है उसमें। यह पद्मनन्दिपंचविंशति में आया है। यह शब्द है। अनन्त बार तूने बापू! राग और विकार की बातें सुनी है और परिचय में आयी है और अनुभव में आयी है। उसमें, पद्मनन्दिपंचविंशति में है। उसमें तो है परन्तु उसमें उसने अर्थ किया है। समयसार में अर्थ किया है। बलभद्र ने अर्थ किया है। श्रुत अर्थात् ज्ञान, परिचित श्रुतपरिचित अर्थात् दर्शन अनुभूति अर्थात् चारित्र। आहाहा! उसमें पद्मनन्दिपंचविंशति में है। आहाहा! श्रुत परिचित अनुभूता। प्रभु! तूने बहुत बार सुना। पुण्य और पाप की बात तो अनन्त बार सुनी और अनन्त बार किये, अनन्त बार फल भोगा। यह भटकते.. भटकते.. आहाहा! ब्रह्मदत्त जैसा चक्रवर्ती, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, हीरा जड़ित पलंग में सोया हुआ, मरकर सातवें नरक में गया। अभी सातवें नरक में है। अभी पिच्यासी हजार वर्ष हुए हैं। अभी यह अरबों के अरबों वर्ष उसके अरबों वर्ष अभी सातवें नरक में तैंतीस सागर (की आयु) है। आहाहा! गजब बात है। एक अन्तर्मुहूर्त की कल्पना की, उसका फल कितना पल्योपम के नरक का दुःख भोगा है। अभी उसमें पड़ा है, सातवें नरक में भोगता

है। अभी तो पिच्यासी हजार वर्ष गये हैं। अभी तो असंख्य, बहुत-बहुत अरबों वर्ष बाकी है। आहाहा! एक अरब नहीं। पल्योपम के असंख्यातवें भाग में असंख्य अरब जाते हैं, ऐसे एक पल्योपम, ऐसे दस हजार पल्योपम का एक सागरोपम, ऐसी तैंतीस सागर की स्थिति में अभी पड़ा है। आहाहा! जब यहाँ था तब बापू! फिर गया था। हीरे के पलंग में हम मानो... आहाहा! बापू! जो आनन्द के सागर को भूलकर, प्रभु! तू क्या कर रहा है? और किसके लिये? स्त्री, पुत्र, सब आजीविका की ठगों की टोली है। ठीक न हो तो एकान्त में बोले। किसलिए विवाह किया था? किसलिए आये थे हाथ जोड़ते? एकान्त में बोले। बाहर में यह बात न आवे। है?

एक के ऊपर और पत्र आया था। यहाँ है, बैठे हैं। उनका ऐसा पत्र आया कि यह तुम हमारा ध्यान नहीं रखते तो वृद्धा महिला से विवाह करना था और जवान से किसलिए विवाह किया? समझ में आया? वे इसमें बैठे हैं। नाम नहीं देते। ऐसा पत्र आया था। ऐसा कहे, तुम यहाँ नहीं आते, तुम हमारे पास भोग नहीं लेते तो वृद्ध से विवाह करना था न? जवान से विवाह करके भागकर चले गये? यह सब समझने जैसे हैं। देवीलालजी! आहाहा!

मुमुक्षु : कहीं सबके घर में ऐसा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके घर में ऐसा ही है। सब ठगों की टोली है। आहाहा! समुचित वस्त्र न लाये हों और समुचित कपड़े न लाये हों तो मेढ़ूं मारे। ऐसे कपड़े होते हैं? ऐसे गहने? लड़के का विवाह होता है और अच्छी साड़ी लाना चाहिए, अमुक करना चाहिए। आहाहा! दुनिया तो है दुनिया। वह यह क्या कहते हैं?

अपनी अजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये)... आहाहा! **(स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है।** तुझे ठगते हैं। लाओ.. लाओ.. लाओ.. कपड़े लाओ, अमुक लाओ, अमुक लाओ, अपने पास इतने पैसे हैं तो उसके प्रमाण में साड़ी, सौ-दो सौ की नहीं होती, पाँच हजार की साड़ी लाओ, दस हजार की (साड़ी) लाओ। वह जरी भरी है न जरी? छोर में जरी भरी हुई होती है न? क्या कहलाती है वह? ऐसे पल्लू रखते हैं न? जरी भरी हुई होती है। पल्लू। कीमती जरी भरी होती है। पाँच-पाँच हजार की साड़ी होती है। बहुत सब देखा और बहुत सुना है। और वह साड़ी पहनकर पुत्र की बहू बाहर निकले और दूसरे दूसरी नजर से देखे। यह ऐसा मानता है कि मेरी साड़ी

बाहर प्रसिद्ध होती है और पैसेवाला हूँ, यह बाहर प्रसिद्ध होता है न? ऐसे स्वार्थ के पुतले। आहाहा! वह साड़ी चाहिए महिला के ऊपर सामनेवाले की नजर फिरी हो। यह कहता है मेरी बहू पहनकर निकली है और वह देखते हैं। बाहर हमारी इज्जत बढ़ती है। पाँच हजार की साड़ी है, लोग देखते हैं। आहाहा! यह सब ठग हैं। कठिन काम, भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं (कि) स्वद्रव्य के अतिरिक्त चाहे तो चाहे जो परद्रव्य हो और परद्रव्य के आश्रय से जो विकल्प है, वह दुःखरूप है। आहाहा! चाहे तो शुभविकल्प हो या अशुभ हो। आनन्द का सागर भगवान, उसके पास उस विकल्प की क्या कीमत है? आहाहा! जिसके साथ तुलना, आत्मा के आनन्द के अनन्तवें भाग भी विषय में सुख है, ऐसा है ही नहीं। उसके साथ में तुलना कर सके? वह विकल्प है, दुःख है। भगवान वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आहाहा! अरबोंपति और करोड़ोंपति कुछ न कुछ सुखी तो होंगे न, फिर भले आत्मा के सुख से अनन्तवें भाग... ? उससे अनन्त गुणा जहर है। भाग-बाग नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! प्रभु का पुकार है।

जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ की यह वाणी है और स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! ठगों की टोली। यह स्त्री, पुत्र, मित्र,... आहाहा! यह लड़के की बहू भी बड़ी-बड़ी भाषा कहे, बापूजी! ऐसा है। बापूजी! ऐसा है - ऐसा कर-करके गहने लिवावे, कपड़े लिवावे, अमुक लिवावे। यह सब ठग हैं, कहते हैं। ऐई! देवीलालजी! आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो बिल्कुल निर्लेप रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! यह तो पहले आया था, तब कहा, भाई! हमारा नाम लेना नहीं। बड़े भाई आये। उन्हें दो दुकानें थीं। उनकी दुकान अलग थी और हमारी दुकान अलग थी। उनका विवाह करना था तो हमारी दुकान में आये। भाई! यहाँ से तुम्हारी सगाई करके विवाह करना है, हों! मेरा नाम लेना नहीं, कहा। एक छोटा भाई है, उसका करो। वह बेचारा विवाह करके दो वर्ष में मर गया। यह तो देह की स्थिति, बापू! शरीर देखो तो ऐसा मजबूत था। मुझसे दो वर्ष छोटा था। बीस वर्ष में विवाह और बाईस वर्ष में तुरन्त ही आया था। शान्तिभाई को खबर नहीं होगी, यह ७१ के वर्ष में विवाह और विधवा हुए और तुरन्त 'नाग्नेश' आने से पहले। सब पूरा परिवार।

गांडाभाई, खुशालभाई सबको लेकर। ताराचन्दभाई के यहाँ उतरे थे। हमारे सन्तोकबा रिश्तेदार होते हैं न ? सन्तोकबा नाग्नेश। ७३ के वर्ष की बात है। ७१ के वर्ष में विवाह और ७३ के वर्ष में गुजर गया। विधवा महिला। विधवा महिला परन्तु बहुत रूपवान थी। बहुत रूपवान। वह छह महीने में पति के पीछे झूरकर मर गयी। यह संसार सब ऐसा देखा है।

यहाँ कहते हैं, बापू! सब ठगों की टोली है। तुझे चाहे जैसा लगता हो। दूसरे मक्खन लगावे। ऐसा करेंगे, बापू! ऐसा करेंगे, अमुक करेंगे। आहाहा! इतने पैसे मिलने के बाद अपन उसका ऐसा करेंगे, फिर ऐसा करेंगे। वे वापिस परस्पर में सिफारिश लगावे, भाई! कि यह सब ठगों की टोली तुझे मिली है। बात जँचना कठिन पड़ती है। भाई-भाई में ठगों की टोली, पति-पत्नी में ठगों की टोली। पत्नी-पति की ठगों की टोली और पति की ठगों की टोली। एक-दूसरे ठग हैं। तू मरकर नरक में जावे तो मुझे क्या ? मरे तब रोते हैं तो कोई ऐसा रोता है कि मरकर कहाँ गया होगा ? ऐसा रोता है कोई ? क्या कहा ? मरकर जाए, तो ऐसा पूछते हैं कि चालीस वर्ष का मर गया, पैंतीस वर्ष का मर गया। मरकर कहाँ गया होगा ? ऐसा किसी ने पूछा ? वह मर गया, हमारे कहाँ स्नान करना है ? यहाँ घर और दुकान सम्हालता था, वह हमारा गया, उसे हम रोते हैं। आहाहा! वह मरकर कहाँ गया ? ऐसा कोई पूछता है ? आत्मा मरकर कहाँ गया ? आत्मा तो नित्य है। देह छूट गयी। यहाँ से कहाँ अवतरित हुआ होगा ? अरे! कैसे चौरासी के अवतार। स्त्री मर जाए तो विचार करता है कि वह मरकर कहाँ गयी होगी ? पति मरे तो स्त्री ने ऐसा विचार किया होगा कि वह मरकर कहाँ गये होंगे ? हमारी सुविधा जाती है, उसे सब रोते हैं। आहाहा! यह बात बैठना बहुत कठिन। आहाहा!

अब टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं। यह तो आधार था।

श्लोक-१३७

और (इस १०१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(मंदाक्रांता)

एको याति प्रबल-दुरघाज्जन्म मृत्युं च जीवः,
कर्मद्वन्द्वोद्भवफलमयं चारुसौख्यं च दुःखम्।
भूयो भुङ्क्ते स्वसुखविमुखः सन् सदा तीव्रमोहा-
देकं तत्त्वं किमपि गुरुतः प्राप्य तिष्ठत्यमुष्मिन्।।१३७।।

(वीरछन्द)

जन्म मृत्यु को प्राप्त करे यह जीव अकेला दुष्कृत से।
तीव्र मोह से विमुख हुआ यह जीव अकेला निज सुख से॥
कर्म शुभाशुभ का फल सुख दुःख जीव एक भोगे बहु बार।
किसी तरह गुरु से पाकर निज तत्त्व भोगता सौख्य अपार॥१३७॥

[श्लोकार्थः] जीव अकेला प्रबल दुष्कृत से जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है; जीव अकेला सदा तीव्र मोह के कारण स्वसुख से विमुख होता हुआ कर्मद्वन्द्वजनित फलमय (-शुभ और अशुभकर्म के फलरूप) सुन्दर सुख और दुःख को बारम्बार भोगता है; जीव अकेला किसी भी प्रकार गुरु द्वारा एक तत्त्व को (-चैतन्यतत्त्व को) प्राप्त करके उसमें स्थित रहता है॥१३७॥

श्लोक -१३७ पर प्रवचन

१३७वाँ (कलश) है न? १३७।

एको याति प्रबल-दुरघाज्जन्म मृत्युं च जीवः,
कर्मद्वन्द्वोद्भवफलमयं चारुसौख्यं च दुःखम्।
भूयो भुङ्क्ते स्वसुखविमुखः सन् सदा तीव्रमोहा-
देकं तत्त्वं किमपि गुरुतः प्राप्य तिष्ठत्यमुष्मिन्।।१३७।।

जीव अकेला प्रबल दुष्कृत से जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है; जीव अकेला सदा तीव्र मोह के कारण स्वसुख से विमुख होता हुआ कर्मद्वन्द्वजनित फलमय (-शुभ और अशुभकर्म के फलरूप)... भाषा देखो! इतनी है। **सुन्दर सुख...** इस संसार के। सुन्दर सुख, दुःख है। दुनिया की भाषा में। पाठ में है न? '**चारुसौख्यं**' आहाहा! दुनिया ऐसा कहती है, दुनिया की भाषा से कहते हैं। आहाहा! दुनिया को उसे कहते हैं, पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये होवे तो.. ओहोहो! क्या भाई सुखी हैं! हमारा परिवार बहुत सुखी। तुम्हारे मलूकचन्दभाई कहते थे, न्याल सुखी है, ऐसा कहते थे। एक बार कहते थे। न्याल। क्योंकि लड़का नहीं है, चार-पाँच करोड़ रुपये हैं। बड़ा बँगला और बगीचा, बाग और बगीचा। वे कहते थे। न्याल। लड़कों में न्याल सुखी है। अब सुखी किसे कहना इसमें? क्योंकि एक लड़की है, उसके लड़के को साथ रखे। वह पाप करके पैसे होंगे तो देंगे। आहाहा! यह दुनिया।

यहाँ कहते हैं अकेला **प्रबल दुष्कृत से जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है; जीव अकेला सदा तीव्र मोह के कारण स्वसुख से विमुख होता हुआ कर्मद्वन्द्वजनित फलमय (-शुभ और अशुभकर्म के फलरूप) सुन्दर सुख...** अर्थात् यह सेठाई का, राग का, देव का। यह लौकिक भाषा में रखा है। है तो दुःख। राजा और देव सब दुःख के समुद्र में डूब गये हैं बेचारे। आहाहा! आनन्द का सागर अन्दर डोलता है। आहाहा! यह विकल्प तो एक कृत्रिम, क्षणिक उत्पन्न होता है, जाता है, उत्पन्न होता है और जाता है। यह कहीं शाश्वत् चीज़ नहीं है। शाश्वत् चीज़ तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर ध्रुव है। आहाहा! उस पर दृष्टि नहीं, उस पर आश्रय नहीं, और कृत्रिम क्षणिक पर सब आलम्बन.. आहाहा! और हम सुखी हैं (-ऐसा मानते हैं।)

बहुत वर्ष पहले एक व्यक्ति को यहाँ... नानालालभाई का रिश्तेदार। कैसा था? चूडगर। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। सुखी की व्याख्या क्या? कहा। पैसा है, यह सुखी की व्याख्या? आहाहा! अरे रे! पैसा जड़ है, धूल है, मिट्टी है। वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। विकल्प उठता है, वह तेरा नहीं तो फिर और तेरा पैसा कहाँ आया? आहाहा! स्व के आश्रय बिना पर के आश्रय में विकल्प उठे... आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं। '**परदव्वादो दुग्गई**' प्रभु ऐसा कहते हैं। आहाहा! मोक्षपाहुड़ में (कहा है) '**परदव्वादो दुग्गई**' जितना स्वद्रव्य को भूलकर परद्रव्य की ओर विकल्प उठता है, वह सब दुर्गति है। तेरी चैतन्यगति

नहीं है। भले देवलोक में जाए तो वह दुर्गति है। आहाहा! वहाँ अकेला दुःख ही है। आहाहा! राग का क्लेश... राग का क्लेश भोगता है। अरे! इसमें बहुत अन्तर। इतना सब अन्तर मानना।

सुन्दर सुख और दुःख को बारम्बार भोगता है;... यह लौकिक की दृष्टि से भाषा की है। **जीव अकेला...** चाहे जैसे करके यह **गुरु द्वारा...** आहाहा! चाहे जैसे करके अर्थात् पुरुषार्थ करके **किसी भी प्रकार गुरु द्वारा एक तत्त्व को (-चैतन्यतत्त्व को) प्राप्त करके...** भाषा देखो! चैतन्यतत्त्व भगवान है। पुण्य को पाकर, मनुष्यपने को पाकर-ऐसा भी नहीं कहा और गुरु द्वारा भी पाकर क्या? चैतन्य को। गुरु को पाकर, ऐसा भी नहीं कहा। **किसी भी प्रकार गुरु द्वारा एक तत्त्व को...** आहाहा! एक चैतन्यतत्त्व भगवान अन्दर सच्चिदानन्द की मूर्ति, अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछलता है। ऐसा जो चैतन्यतत्त्व गुरु द्वारा... इसमें दो-तीन न्याय हैं। एक तो एक कहा कि गुरु हैं, वे चैतन्यतत्त्व को बतलाते हैं। गुरु जो हैं, वे चैतन्य का आश्रय करने को बतलाते हैं। एक बात। और उसे समझने के लिये निमित्तरूप से होवें तो सच्चे गुरु ही होते हैं, दो बात। तथापि उन गुरु को पाकर गुरु ने कहा उस चैतन्यतत्त्व को पाकर—ऐसा कहा। गुरु को पाकर, छोड़कर चैतन्यतत्त्व को पाकर, ऐसा कहा। आहाहा! थोड़ी भाषा में अन्तर। आहाहा!

अकेला चाहे जैसे करके अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा, प्रयत्न द्वारा सहज स्वभावसन्मुख होकर गुरु ने कहा, गुरु ने यह कहा। आहाहा! दूसरा सब उपदेश आया, वह सब व्यवहार है। वस्तु आदरणीय यह उन्होंने कही है। बारह अंग में और चौदह पूर्व में यह एक चैतन्यतत्त्व को आदरणीय कहा है। आहाहा! ऐसा कहा न? चाहे जैसे करके। **गुरु द्वारा एक तत्त्व को (-चैतन्यतत्त्व को) प्राप्त करके...** गुरु द्वारा, यह निमित्त की बात की है। निमित्त गुरु ऐसे होते हैं कि वे चैतन्यतत्त्व को बतलाते हैं। पुण्य करना, ऐसा करना और उससे तुझे ऐसा होगा—यह बतलावे, वे गुरु नहीं हैं। व्यवहार करना और व्यवहार करने से तुझे लाभ होगा, वे गुरु नहीं हैं। इसमें आया या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : आपको एक को गौण करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! गुरु कहते हैं, वह किया - ऐसा कहा। आत्मावलोकन में आता है।

गुरु वीतरागता का उपदेश देते हैं। पर का आश्रय छुड़ाकर स्व-आश्रय का उपदेश देते हैं। वीतरागपने का ही उपदेश देते हैं। वीतरागपना, यह बारह अंग का सार है। आहाहा! उसमें है बहुत करके। एकत्वसप्तति, पद्मनन्दिपंचविंशति। पूरे बारह अंग का सार साम्य, स्वास्थ, चित्त निरोध, शुद्धोपयोग यह बारह अंग का सार है। आहाहा! और... है वह शुद्धोपयोग, शुभभाव से होता है - ऐसा नहीं। एक तत्त्व को, चैतन्यतत्त्व को पाकर। पहले शुभभाव को पाकर और फिर चैतन्यतत्त्व को प्राप्त करे, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उसमें है या नहीं? आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है। दुनिया के साथ कुछ मेल खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

स्वयं टीकाकार का कलश है, हों! पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! गुरु उसे कहते हैं कि इस चैतन्यतत्त्व को बतावे। आहाहा! लाख बात की बात करके भी चैतन्य के आश्रय की ही बात करे। आहाहा! यह करोगे तो ऐसा होगा, पूजा करोगे तो ऐसा होगा, भक्ति करोगे तो ऐसा होगा, यात्रा करोगे तो ऐसा होगा—यह बात गुरु द्वारा नहीं हो सकती। आहाहा! गुरु उसे कहते हैं कि जो चैतन्यतत्त्व को बतलावे। उन्होंने बतलाया, उसे वह प्राप्त हुआ। ऐसा आया न? **किसी भी प्रकार गुरु द्वारा एक तत्त्व को (-चैतन्यतत्त्व को) प्राप्त करके...** गुरु ने तो बहुत बात की है परन्तु एक ही तत्त्व को प्राप्त करने का सार उन्होंने कहा। आहाहा! व्यवहार से कहे, भेद करके समझावे, तथापि उन सबका आश्रय अभेद एक चैतन्य है, उसका आश्रय लेना। ऐसे चैतन्य को पाकर... आहाहा! इतना पुण्य करके, इतने दया-दान करके, इतनी भक्ति करके, इतने पैसे खर्च करके चैतन्यतत्त्व को प्राप्त करे - ऐसा नहीं कहा। उसमें है या नहीं। आहाहा!

अकेला जीव चाहे जैसे करके... आहाहा! **गुरु द्वारा...** देशनालब्धि है। देशनालब्धि है परन्तु तो भी एक तत्त्व को पाकर, वह भी गुरु के सामने देखकर नहीं। उस चैतन्यतत्त्व को पाकर। आहाहा! वह भी एक तत्त्व—चैतन्यतत्त्व। गुणभेद और पर्यायभेद, वह पर्याय भी नहीं। पर्याय नहीं - ऐसा आया है न? अबद्धस्पृष्ट। समयसार की १४-१५ गाथा। अविशेष। उसमें विशेष नहीं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद भी नहीं और पर्याय के विशेष भी नहीं। एक तत्त्व को पाकर। आहाहा! देखो! '**जो पस्सदि अप्पाणं**' आत्मा को देखना होवे तो इस प्रकार से देख। विशेष से रहित देख। विशेष का अर्थ गुणभेद और पर्यायभेद से

रहित। आहाहा! ऐसा महँगा लगे, फिर सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वाले निश्चय कहते हैं, एकान्त कहते हैं। कहो बापू! जैसा कहो वैसा। वस्तु यह है। यह शास्त्र की बात है या नहीं? यह सब क्या है? पढ़ना नहीं, विचारना नहीं, समय लेना नहीं और अध्धर से गप्प मारना है। ऐसा नहीं चलता, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ का मार्ग (है)। वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर जिनेश्वरदेव साक्षात् विराजते हैं। इन्द्र सुनने जाते हैं। बाघ, नाग, सिंह, सुनने जाते हैं। प्रभु की वाणी तो यह आयी है। भाई! तू अकेला तेरे चैतन्यतत्त्व को प्राप्त कर। प्रभु! आहाहा! किसी की सहायता बिना, किसी की मदद बिना, किसी की अपेक्षा बिना। आहाहा! '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' यह त्रिकाली वस्तु, वह शुद्धनय है। उसका आश्रय करने से चैतन्य को पाया जाता है। इसका दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं, भाई! तू चाहे जितनी बात कर। बारह अंग और चौदह पूर्व में बहुत सब भरा है परन्तु सब यह। वह तो सब इसका विस्तार है। आहाहा! फिर चैतन्यतत्त्व के गुण क्या? पर्याय क्या? विकार कैसे होता है? विकार का निमित्त क्या? यह सब करके समझ में यह लेना है। आहाहा! **एक तत्त्व को प्राप्त करके...** एक तत्त्व को प्राप्त करके। आहाहा! देव-गुरु तो साथ में नहीं वापस।

मुमुक्षु : गुरु द्वारा....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु द्वारा कहा अर्थात् यह तो उन्होंने उसमें कहा, इसलिए कहा। उन्होंने इसे कहा कि जो चैतन्यतत्त्व प्रभु, यह है, इतनी बात की परन्तु उनके सामने देखकर चैतन्यतत्त्व प्राप्त नहीं किया जाता। आहाहा!

एक तत्त्व को (-चैतन्यतत्त्व को) प्राप्त करके उसमें स्थित रहता है। आहाहा! वह अकेला तत्त्व प्राप्त करके स्थिर रहता है। उसमें किसी की मदद नहीं है। अकेला जन्मे, अकेला मरे, अकेला लौकिक में सुखी-दुःखी हो और अकेला मुक्ति को प्राप्त करे। आहाहा! उसमें दूसरे किसी की कुछ आवश्यकता और अपेक्षा नहीं है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! एक चैतन्यतत्त्व... कठिन लगे परन्तु प्रभु! मार्ग यह है। दूसरे बहुत व्यवहार के कथन आवें परन्तु उसका फल व्यवहार बताता है उस निश्चय को, इतनी अपेक्षा से व्यवहार पूज्य कहा जाता है परन्तु बतलाता है उस निश्चय को। चैतन्यतत्त्व को बतलाता है। आहाहा! इससे वह व्यवहार कहनेवाले और सुननेवाले को आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। यह १०१ गाथा हुई।

गाथा-१०२

एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।१०२।।

एको मे शाश्वत आत्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः।
शेषा मे बाह्या भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः।।१०२।।

एकत्वभावनापरिणतस्य सम्यग्ज्ञानिनो लक्षणकथनमिदम्। अखिलसन्सृतिनन्दनतरु-मूलालवालाम्भःपूरपरिपूर्णप्रणालिकावत्सन्स्थितकलेवरसम्भवहेतुभूतद्रव्यभावकर्माभावादेकः, स एव निखिलक्रियाकाण्डाडम्बरविविधविकल्पकोलाहलनिर्मुक्तसहजशुद्धज्ञानचेतनामतीन्द्रियं भुञ्जानः सन् शाश्वतो भूत्वा ममोपादेयरूपेण तिष्ठति, यस्त्रिकालनिरुपाधिस्वभावत्वात् निरावरणज्ञान-दर्शनलक्षणलक्षितः कारणपरमात्मा; ये शुभाशुभकर्मसंयोगसम्भवाः शेषा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहाः स्वस्वरूपाद्बाह्यास्ते सर्वे; इति मम निश्चयः।

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे है परे॥१०२॥

अन्वयार्थ : [ज्ञानदर्शनलक्षणः] ज्ञान-दर्शन-क्षणवाला [शाश्वतः] शाश्वत [एकः] एक [आत्मा] आत्मा [मे] मेरा है; [शेषाः सर्वे] शेष सब [संयोगलक्षणाः भावाः] संयोगलक्षणवाले भाव [में बाह्याः] मुझसे बाह्य हैं।

टीका : एकत्वभावनारूप से परिणमित सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है।

त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित ऐसा जो कारणपरमात्मा वह, समस्त संसाररूपी नन्दन वन के वृक्षों की जड़ के आसपास क्यारियों में पानी भरने के लिए जलप्रवाह से परिपूर्ण नाली समान वर्तता हुआ जो शरीर, उसकी उत्पत्ति में हेतुभूत द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित होने से एक है, और

वही (कारणपरमात्मा) समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर के विविध विकल्परूप कोलाहल से रहित सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ शाश्वत रहकर मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है; जो शुभाशुभ कर्म के संयोग से उत्पन्न होनेवाले शेष बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह, वे सब निज स्वरूप से बाह्य हैं।—ऐसा मेरा निश्चय है।

गाथा -१०२ पर प्रवचन

गाथा १०२

एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।१०२।।

आहाहा!

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे है परे॥१०२॥

आहाहा! **एकत्वभावनारूप से परिणमित सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है।** एकत्वभावनारूप से परिणमित, शुद्धोपयोग से परिणमित... आहाहा! साम्यभाव से परिणमित, समताभाव से परिणमित, शुभाशुभभाव से चित्त का निरोध करके परिणमित—ऐसे सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है। आहाहा! **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से...** अब यह आत्मा '**एगो मे सासदो अप्पा**' कहा न? मेरा भगवान एक शाश्वत् आत्मा है। आहाहा! परमात्मा शाश्वत् है, वे तो उनमें। मेरे लिये तो '**एगो मे सासदो अप्पा**' - ऐसा है न?

त्रिकाल निरुपाधिक... उपाधिरहित **स्वभाववाला होने से...** यह **निरुपाधिक स्वभाववाला होने से...** भगवान आत्मा जो त्रिकाली चैतन्यद्रव्य है, वह तो निरुपाधिक स्वभाववाला **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित। परन्तु कैसा? **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित...** आहाहा! उसके लक्षण को आवरण नहीं। स्वयं भी त्रिकाली निरावरण है और जिसका लक्षण भी निरावरण है। आहाहा! ऐसे **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित ऐसा जो कारणपरमात्मा...** देखो! ऐसा यह

कारणपरमात्मा, आत्मा। कारण शब्द रखकर सब उड़ा देने के लिये रखा है। तब उस निर्मल पर्याय का कारण कारणपरमात्मा है। आहाहा! दूसरा कोई कारण नहीं है। थोड़ी लिखी बात, वह सुनना होवे तो भी यह और बहुत होवे तो भी यह है। आहाहा!

त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से... तीनों काल। निगोद में भी द्रव्य का निरुपाधि स्वध्भाव है। कारणपरमात्मा को उपाधि है ही नहीं। आहाहा! **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला होने से...** यह कारण। **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित ऐसा जो कारणपरमात्मा...** आहाहा! कारणपरमात्मा कौन? यह आत्मा त्रिकाली वस्तु, वह कारणपरमात्मा।

विशेष कहा जाएगा..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)